"संस्कारतत्व"

स्यादष्ट चत्वारिंशद्भि संस्कारैर्ब्रह्मलोकगः
(अड़तालीससंस्कारों से ब्रह्मलोक
गामी होता है ।)

अग्निपुराण १६६अध्याय ६श्लोक

कलियुग पावन स्वभजन विभजन प्रयोजनावतार,
भगवत् श्रीश्रीकृष्णचैतन्यचन्द्र चरणानुचर
माध्वगौडेश्वराचार्य्य श्रीगोपालभट्ट गोस्वामि
सन्निवेशित प्रथम पीठाधिष्ठित श्रीश्रीराधा-
रमणदेवसेवानिष्ठ गोस्वामि
श्रीतत्वारामाङ्गज

श्रीमधुसूदन गोस्वामि

सङ्कलित

श्रीदेवकीनन्दन यन्त्रालय में
श्रीनित्यस्वरूप ब्रह्मचारीद्वारा मुद्रित

प्रथमवार १००० । मूल्य ‑) आना मात्र

सन्दर्भ सदन के नियम ।

१—सन्दर्भ सदनसे प्रकाशित पुस्तकें बहुतही सुलभ मूल्य पर प्रचार की जाती हैं।

२—अल्प मूल्य होने के कारण वेलुपेवल का झगडा नहीं रक्खागया है।

३—डांक महसूल पृथक है।

४—'सन्दर्भ' सब धर्म प्रचारही के निमित्त प्रकाश किये जाते हैं, व्यापार व्यवसाय के निमित्त नहीं।

५—जो पत्र सम्पादक महोदय 'सन्दर्भ' की समालोचना करें उनको उचित है कि जिस संख्या में समालोचना करें वह पत्र सन्दर्भ सदन में व्यारिंग भेज दें। क्योंकि सन्दर्भ सदन निष्किञ्चन वैष्णवों की गोष्ठी है अतः मूल्य देकर पत्र नहीं लिये जाते हैं।

६—इकट्ठी पुस्तक लेने पर भी कमीशन नहीं दिया जाता है।

७—धर्म सम्बन्धी पुस्तकों के परिवर्त्तन में पुस्तकें दी जायगीं, पुस्तक पसन्द कर लेना सन्दर्भ सदन के परिचालकों के अधिकार में है।

८—सन्दर्भों का मूल्य इतना स्वल्प निर्द्धार किया जाता है कि उससे कुछ लाभ नहीं लियाजाता है, केवल कागज स्याही प्रिंटिंग चार्ज आदिकाहीं निर्वाह होता है। तथापि यदि कुछ लाभ होजाता है तो निष्किञ्चन वैष्णवों की सेवा में खरच किया जाता है।

९—सन्दर्भ सदन सम्बन्धीय समस्त पत्रादि निम्न लिखित पते से आने चाहियें।

राधाकृष्ण गोस्वामी।

सन्दर्भ सदन,—वृन्दावन, ।जि० मथुरा।

संस्कारतत्व ।

पृथवी पर सव से प्राचीन पुस्तक वेद ही है, को यदि प्रमाणों से सिद्ध करैं तो एक दूसरा प्रश्न कि क्या पा पुस्तक होजाय । अतः जवतक इस प्रस्ताव का रा ऽ करना है तवतक के लिये मान लीजीये कि वेद सवसे प्राचीन पुस्तक है ।

पृथवी पर जितने धर्म हैं 'वैदिक धर्म्म' ही सव से प्राचीन है । विना पुस्तक के कोई धर्म नहीं होता, जिस पुस्तक के आधार पर जो धर्म चलता है उस धर्म की वही पुस्तक मूल कहलाती है । सनातन धर्म्म वेद के आधार पर है, इसी से इस धर्म का नाम 'वेद मूलक' धर्म है और वेद का नाम सनातन धर्म की 'मूल पुस्तक' है ।

वेद में तीन काण्ड हैं (१) कर्मकाण्ड (२) ज्ञानकाण्ड (३) उपासना काण्ड । यह तीनों हीकाण्ड हमारे तीन भावोंसे सम्वन्ध रखते हैं । कर्मकाण्ड शरीरसे, ज्ञानकाण्ड इन्द्रीयगण और बुद्धिसे, उपासना काण्ड आत्मासे ।

आज कर्म काण्ड का ही विचार कीया जाताहै । इस शरीर के साथ कर्म का ऐसा घन सम्वन्ध है कि, शरीर' विना कर्म किये नहीं रहता' और कर्म विना, शरीरकी रक्षाकठिन है । वह कर्म तीन भागों में विभक्त हैं (१) कर्म (२) अकर्म (३) विकर्म ।

कर्म वह है जो शास्त्र में हमको कर्तव्य रूप से उप-

और बेद में हिंसा करना मना है " मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि " समस्त भूतमात्र को न मारना चाहिये और तस्मात् ब्राह्मण स्सुराम् न पिबेत् " बेद में हिंसा . षेध से मांसभक्षण का निषेधहै, और ब्राह्मण ाप पान का भी निषेध है । सुतराम् मांस भक्षण या मद्य पान करना विकर्म ठहरा ; क्योंकि यह निषेध ..

इसका निषेध तो शास्त्र के वचनों से यहां दिखा गया है । परन्तु इनके पाप होने का दूसरा यह .. ्माण है कि धर्म शास्त्र में जीवहिंसा और मद्यपान का प्रायश्चित्त लिखा है बिना पाप के प्रायश्चित नहीं होताहै ।

यह एक भोजन में तीनों कर्म दिखलाये गये हैं अब और भी स्पष्ट समझाने को कुछ उदाहरण देतेहैं ।

जैसा एक विषय है 'चलना' यह भी तीनोंही प्रकार काहै । कर्म ' अकर्म ' विकर्म । यज्ञमें 'विष्णु क्रम' आदि गतियों का चलना ' वा 'तीर्थ यात्रा' भगवद्दर्शन , परिक्रमादिक करना ' कर्म रूप चलना है ; बाजार घूमना , वा सडकों पर' मोरनिंग वाक करना , अकर्म रूप चलनाहै ; ओर चोरि करने जाना , वा वेश्याके यहां जाना वा सरकारी समन और वारन्ट को देखकर भागना , विकर्म रूप चलना हैं ।

एक विषय है देखना, श्रीभगवान् का दर्शन करना साधु महात्माओं को देखना , कर्म रुप देखनाहै ; ताजगंज का रोजा वा कलकत्ते के म्यूजिअम को देखना , अकर्म रूप देखना है किसी के मालको चुरालेजाने की निगाहसे देखना , वा किसी भद्र घर की रमणी को घूरना विकर्म रूप देखना है ।

अब तुम इस दिग्दर्शन से समस्त कर्मों में कर्म, अकर्म, .विकर्म का भेद , अपनी बुद्धि से जानसकोगे ।

विकर्म तो कभी करना ही नहीं चाहिये' अकर्मभी जहां तक हो स्वल्प मात्रा से अनासक्त होकर करना चाहिये, कर्म रकने हीपर सर्वदा उद्योग और लक्ष्यरखना उचित है। इसी कर्म को सहज में समझाने के लिये एक विशेषण कर 'सत्कर्म' वनादेते हैं यदि कर्म शब्द से भ्रम पडता तो अब तुम सत्कर्म याद रखो। याद ही मतरखो परन्तु-कर्म करने में सदा उद्यत रहो।

किसी चीज पर चांदी वा सोंने की गिलट चढाने के पहले उसको माजघिसकर उज्वल कियाजाता है, जव तक उसपर कुछ कीट वा जंग लगी रहती है तवतक कभी उत्तम रंग नही चढ सक्ता। एसे ही हम तुम पर जवतक मलिनता की ज़ंग चढी हुईहै ज्ञान और भक्ति का रंग कभी नहीं चढैगा, भला कहिये तो जंग पर रंग कहां है।

हमारे शरीर मन इन्द्रीय और आत्मा में जो मलीनता है उसको धोकर उनको ज्ञान भक्ति के रंग चढानें के योग्य वनाना इसी क्रिया का नाम है "संस्कार"।

हमारे वर्णाश्रमधर्म्म के पालन करने वाले हिन्दुओं में 'संस्कार' करने की एक रीती है।

ऐसी संस्कार की रीति और और जाति वा धर्म्म में भी है परन्तु हम यहां उनका कुछ उल्लेख न कर केवल हिन्दू जाति के उन संस्कारों को जो वेद के अनुसार कियेजाते है सर्व साधारण के सुखवोधार्थ संक्षेप से लिखेंगे।

हिन्दू धर्म्म का एक यह सिद्धान्त है कि जिसके जितने अधिक संस्कार होते हैं वह उतनाही उत्तम होता है।

यवन राज्य और हिन्दू जाति की अवनति के समय से हमारे संस्कारों में कमी होनें लगी, यहांतक कि कहीं कहीं

चार और कहीं तीन और कहीं दो ही संस्कार रहगये ।

हम देखतेहैं कि वडे वडे उत्तम कुलों में भी नाम करण, चूडा' उपनयन, और विवाह, यही चार संस्कार रहगये हैं; वह भी नाम मात्र । जिन लोगों में नाम करण उपनयन और विवाह, यह तीन ही संस्कार रहेहैं वह भी इनका पूरा संस्कार नहीं करसक्ते हैं यहांतक कि समस्त संस्कारों के पात्र ब्राह्मण कुल में भी जहां तहां 'उपनयन संस्कार' इतना गौण होगया है कि विवाह के समय ही एक पैसे का जनेऊ मगा कर, पंडितजी लडके के गले में गेर देते हैं ।

हम को हमारी ऐसी हीन दशा पर बडा शोक है, परन्तु हर्ष भी यह है कि हमको अवतक जातिय भाव है हम अपने गाडी भरे संस्कारों में से एक वा दो को पकडे हुये वैठे हैं, यह भी हमारी वडी वहादुरी है ।

जिन कारणों से हमारे गाडी भरे संस्कारों में से तीन चार ही हमारे हाथ मे रहगये थे, उसी कारण से और सव संस्कारों को पूरा न करसकने पर भी दस संस्कार ब्राह्मणों में प्रचलित हे, यद्यपि यह दशों संस्कार ब्राह्मण ही के नहीं क्षत्रिय और वैश्य के लिये भी विधान हैं, परन्तु जहां ब्राह्मण ही असमर्थ है वहां विचारे क्षत्रिय वैश्यों की कौन पूछता है । जिन दस संस्कारों के विषय में कहागया हे वे दस संस्कार यह है ।

१ गर्भाधान २ पुंसवन ३ सीमन्तोन्नयन ४ जातकर्म ५ नाम कर्म ६ निष्क्रमण ७ अन्नप्राशन ८ चूडाकरण ९ उपनयन १० विवाह ।

जव कोई अपना नया पंथ चलाना चाहता है तव उसके प्रचलित वातों से कुछ विलक्षण वातें कहने की आवश्यकता होती

है, इसी नियम के अनुसार स्वामीदयानन्दसरस्वती जीने जब अपना ' आर्य्य समाज ' नाम का नया पंथ चलाया तब उन्होंने अपनी संस्कार की पुस्तक में षोडश संस्कारों का वर्णन किया ।

स्मृति कारों ने जो प्रधान दस संस्कार लिखे थे और वही कई सो वर्ष से हिंदू जाति में प्रवृत्त थे षोडश का नाम सुन कर भोले लोग चौंक उठे, ओर समझने लगे कि आहा, स्वामीजी से प्रथम षोडश संस्कार कोई नहीं जानताथा, बहुत से सीधे सचे आदिमियों को यह भी निश्चय होगया कि "स्वामी जीके सिवाय आज तक कोई पंडित ही नहीं हुआ था, हम को तो पाधा पुरोहितों ने दश ही संस्कारों में अटका रखा था परन्तु हमारे षोड्श संस्कार है"।

विना ऐसी अजूबा बात सुने पुराना धर्म छोडकर कौन नये धर्म मे फसता है ।

जिन लोगों ने कभी शास्त्र नहीं देखा है वह षोडश संस्कारों का नाम सुनकर बडे प्रसन्न होते हैं और कहते हैं कि देखो ! तुम दश ही संस्कारों को लिये पडे हो परन्तु हमारे मतमें षोडश संस्कार होते हैं ।

हम को उन षोडश संस्कारों का नाम यहां फिर लिख देने की आवश्याकता है कि आप लोग जान सके कि उन पूर्व के दस संस्कारों में कोनसे ६ संस्कार और बढाकर यह षोडश (सोलह) आने का रुपया पूरा किया गया है, वे षोडश*संस्कार यह हैं ।

(१) गर्भाधान (२) पुंसवन (३) सींमन्त (४) जातकर्म (५) नामकरण (६) निष्क्रमण (७) अन्नप्राशन (८) चूडाकरण (६) व्रतबन्ध (१०-१३) वेदव्रत चतुष्टय (१४)केशान्त (१५) उत्सर्जन (१६) विवाह ।

हम को षोडश संस्कार का नाम सुनकर न कोई नई बात समझ पडी और न चमत्कार हुआ क्योंकि हम इन सोलह संस्कारों से भी कईगुने अधिक संस्कारों को जानते और करते हैं ।

जैसा दश संस्कारों से ऊपर चलकर एक षोडश संस्कार का नम्बर है वैसा ही षोडश संस्कार से ऊपर एक पंचविंशति संस्कार का नम्बर है। वे पंच विंशति संस्कार ये हैं ।

(१] गर्भाधान [१) पुंसवन (३)सीमंत (विश्णु बलि) (५) जात कर्म (३) नामकर्म (७) निषक्रम (८) अन्नाशन (९) चौलकर्म (१०) उपनयन (११—१४) वेदव्रत चतुष्टय (१५) स्नान (१६) उद्वाह (१७) आग्रयण [१८] अष्टका [१९]

---

* किसी किसी ऋषि के मतमें [पैतृमेधिक] संस्कार को मिलाकर षोड़श संस्कार पूर्ण किये हैं जिनके दो प्रकार यह हैं ।

(१)

(१) गर्भाधान (२) पुंसवन (३) सीमन्त (४) जातकर्म (५) नामकर्म (६) अन्नप्राशन (७) चौल (८) उपनयन (९—१२) वेदव्रतचतुष्टय (१३) गोदान (१४) समावर्तन (१५) विवाह (१६) पैतृमेधिक ।

(२)

(१) गर्भाधान (२) पुंसवन (३) सीमन्त (४) जात-कर्म (५) नामकरण (६) निष्क्रमण (७) अन्नप्राशन (८) कर्णवेध (९) चौल (१०) उपनयन (११) वेदव्रत (१२) केशान्त (१३) समावर्तन (१४) विवाह (१५) अग्न्याधेय (१६) पैतृमेधिक

श्रावणी [२०] आश्वयुजी [२१] मार्ग शीर्षी [२१] पार्वण [२३] उत्सर्ग [२४] उपाकर्म [२५] पंच महायज्ञ ।

ये पंच विंशति संस्कार ब्राह्मणों के नित्य अर्थात् अवश्य कर्तव्य रूप से शास्त्रों में लिखे हुए हैं ।

हमको यदि कोई नया पन्थ चलाना होता तो हम पन्च-विंशति संस्कारों कीहि वातों को वडे साज गाज से सजाकर कहते। परन्तु जव हम इनसे भी अधिक संस्कारों से स्वयम् सन्स्कृत है और हजारोंजीवों के ऐसे संस्कार प्रायः करते रहते हैं तव हमको पञ्चविंश २५ संस्कारों से क्या चमत्कार होंना है ।

वेद के अनुसार कर्म करनेवालों को पंचविंशति संस्कार ही पर्याप्त नहीं है उन को तो अष्टचत्वारिंशत [४८) संस्कार करने पडते हैं । कहिये जिनके स्वयम् अडतालीस संस्कार हुएहैं वा जो औरों के ४८ संस्कार वातकी वात में करदेते हैं उन षोड़श संस्कार वा पंचविंशति संस्कार क्या विशेष जान पडेंगे।

अव हम उन अडतालीस संस्कारोंके नाम नीचे लिखते हैं जो वैष्णवों को आवश्यक होते हैं।

[१] गर्भाधान [२] पुंसवन [३] सीमन्तोन्नयन [४] जातकर्म [५] नामकरण [३] अन्नप्राशन [७] चौल [८] उपनयन [६] महानाम्नीव्रत [१०] महाव्रत [११] उप-निषद्व्रत [१२] गोदानव्रत [१३] समावर्तन [१४] बिवाह [१५] देवयज्ञ [१६] पितृयज्ञ [१७] मनुष्ययज्ञ [१८ ॥ भूतयज्ञ [१९] ब्रह्मयज्ञ [२०] अष्टका [२१] पार्वण [२२] श्राद्ध [२३] श्रावणी [२४] आग्रहायणी [२५] चैत्री [२६] आश्व-युजी [ये सात पाक यज्ञ है] [२७] अग्न्याधेय [२८]

अग्निहोत्र (२९) दर्श पौर्ण मास (३०) आग्रयण (३१) चातुर्मास्य (३२) निरूढ पशुबन्ध (३३) सौत्रामणि (ये सात हविर्यज्ञ है) (३४) अग्निष्टोम (३५) अत्यग्निष्टोम (३६) उक्थ्य (३७) षोडशी (३८) वाजपेय (३९) अतिरात्र (४०) आप्तोर्याम । (ये सात सोम यज्ञ हैं)

इन चालीस संस्कारों में कुछ संस्कार देहके हैं कुछ द्रव्य के हैं, इनसे अधिक आठ संस्कार आत्मा में गुण रूप से आधान किये जाते है। ये चालीस देह द्रव्य संस्कार और आठ आत्म-गुण संस्कार मिलकर अडतालीस संस्कार होते हैं, वे आठ आत्म गुण रूप संस्कार ये है।

(४१) सर्व भूतों परदया (४२) क्षान्ति (४३) अनसूया (४४) शौच (४५) अनायास (४६) मङ्गल (४७) अकार्पण्य (४८) और अस्पृहा ।

ये अष्ट चत्वारिंशत् संस्कार "गौतमीय" वैदिकधर्म सूत्र के अष्टम अध्याय में विस्तार पूर्वक लिखे हैं । हम यहां उनके मूल सूत्र मात्र सर्व साधारण के जानने को लिखते हैं।

गर्भाधान पुंसवन सीमंतोन्नयन जातकर्म नाम करणान्न प्राशन चौलोपनयनम् ॥ १४ ॥

चत्वारिवेद् व्रतानि ॥ १५ ॥

स्नानम् सह धर्म चारिणी संयोगः पञ्चानाम् यज्ञानामनुष्ठा-नम् देव पितृ मनुष्य भूत ब्रह्मणाम् ॥ १६ ॥

एतेषाञ्च ॥ १७ ॥

अष्टका पार्वणश्राद्धम् श्रावण्याग्रहायणी चैत्र्याश्वयुजीति सप्त पाक यज्ञ संस्थाः ॥ १८ ॥

अग्न्याधेय मग्नि होत्रम दर्शपौर्णमासावाग्रयणम चातु-र्मास्यानि निरूढपशुबन्धः सौत्रामणीति सप्तहविर्यज्ञ संस्थाः ॥१९॥

अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोमउकथ्यःषोडशी वाजपेयोऽतिरात्र आप्तो-र्याम इति सप्त सोम संस्थाः ॥ २० ॥

इत्येते चत्वारिंशत् संस्काराः ॥ २१ ॥

अथाष्टावात्म गुणाः ॥२२॥

दयासर्वभूतेषु क्षान्तिरनसूया शौचमनायासो मङ्गल मकार्पण्य मस्पृहेति ॥ २३ ॥

यहां हमको यह भी आवश्यकता हुई कि इन संस्कारों का संक्षेप से अर्थ और फल भी समझादें, प्रथम यह बात भी जान लो कि इन सब संस्कारों में प्रथम से १४ तक जीवितांग संस्कार हैं और १५ से लेकर ४० तक के २६ संस्कार कर्त्ता और द्रव्य के संस्कार है एवं ४१ से लेकर ४८ तक के ८ संस्कार केवल आत्मा के संस्कार हैं।

इन ४८ संस्कारो (१) मे गर्भाधान से लेकर विवाह तक १४ संस्कार शरीर के हैं और पंच महा यज्ञ तथा सप्त पाक यज्ञ गृह्य सूत्र में अवश्य कर्त्तव्य और 'गृह्य कर्म' नाम से विहित हैं और 'सप्त हविर्यज्ञ' एवं 'सप्तसोम यज्ञ' वैतानिक कर्म अर्थात् श्रौत अग्नि ही में किये जाते हैं, जिन लोगों ने श्रौतअग्नि स्थापन नही किया है वे इन संस्कारों के अधिकारी नहीं हैं।

'गर्भाधान' संस्कार से माता पिता के शोणीत शुक्र गत दोषों का मार्जन होता है।

'पुंसवनसे' जहांतक संभवहो पुरुष संतानही हो इसका यत्न और कन्या संतानके उत्पादन करने वाले दोष का मार्जन किया जाताहै, सीमंतोन्नयन संस्कार से माताकी अधोवाहिनी शिराओंको

(१) यों तो ये सबही जीवितांग संस्कार हैं, क्यों कि मृत्यु के अनन्तर केभी दूसरे४८ संस्कार हैं, जिनको मिलाने से ९६ संस्कार होते हैं, प्रेत कार्य होने के कारण उनके नाम यहां नहीं लिखे हैं

उर्द्ध श्रोत कर दिया जाता है कि जिससे माता के मस्तिस्क में उत्तम भाव आ जावें और उन्ही उत्तम भावों की छाया गर्भ पर पड कर बालक को भी उत्तम भाव वाला बना दे।

'जात कर्म' संस्कार से गर्भ निवास कृत दोषों का मार्जन किया जाता है।

'नामकरण' संस्कार तो मनुष्य मात्र में है और उसका फल भी सब जानते हैं यदि नाम न हो तो संसार का कोई व्यवहार नही चल सकता।

'अन्न प्राशन' संस्कार एक हिसाब से मनुष्य मात्रही करते है यह एक प्राकृतिक संस्कार है क्योंकि मनुष्य मात्र के बालकों को जन्म काल से जननी का स्तन्यदुग्ध पान कर ही प्राण धारण करना होता है, जब बालककी जाठराग्नि अन्न को परिपाक करने योग्य होती है और नाडियें अन्न रस को धारण वहन करने योग्य होती है तब ही बालक के मुख में दांत दिखलाई देते है यही अन्न प्राशन संस्कार का समय है।

'चौल' संस्कारका रहस्य यों है, वैद्यक शास्त्र में लिखा है यह बाल जो हमारे शरीर में पैदा होते हैं हाड्डियों का मल है, इस शरीर में जितने मल है जबतक शरीर से पृथक् नहीं होते है अशुद्ध नही होते, और कोई मल शरीर से कच्चा गिरने से कुछ न कुछ शरीरकी क्षति करता है। सिर के बाल भी जब तक मुंडाने लायक न हों और उस हालत को न पहुंचे मुंडाना न चाहिये, इसी लिये चूडा संस्कार का एक समय नियत है। वृक्ष जिस तरह कलम कर देने से सघन होकर बढता है बालों की भी यही प्रकृति है कि मुंडादेनेसे बडे सघन होकर बढने लगतेहैं,और इससे मस्तिस्क की सरदी गरमी से रक्षा होती है;यही चौल संस्कार का प्रयोजन है

'उपनयन' संस्कार द्विजातियों में सब संस्कारों में प्रधान माना गया है, क्यों कि यहां तक के सब संस्कार देहके साथही अधिक संबंध रखते हैं किन्तु यह 'उपनयन' बुद्धिके साथ संबंध रखताहै। इसी समय से बुद्धि के बढने के उपाय किये जाते हैं (१) यह संस्कार बुद्धि का संस्कार है इसी समय यज्ञोपवीत गले में डाला जाता है गायत्री का उपदेश किया जाता है संध्या बंदन की शिक्षा दीजाती है और वेदारम्भ कराया जाता है । गुरुकुल में निवास, गुरुसेवा, ब्रह्मचर्य अग्न्युपस्थान भिक्षाचरणभी सिखाये जाते हैं यह संस्कार ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णों का होता है और इन तीनों ही की द्विज संज्ञा है।

उपनयन के अनंतर वेद पढने को चार व्रत किये जाते हैं इन व्रतों में ब्रह्मचर्य्यही प्रधान है उस ब्रह्मचर्य ही में थोडा थोडा सा अंतर कर यह चारों व्रत एक से एक भिन्न किये गये हैं।

'समावर्तन' संस्कार ब्रह्मचर्य्य की समाप्ति है, ब्रह्मचर्य्य के नियम और चिन्हों को त्यागनाही इसका प्रयोजन है।

'विवाह' संस्कार मनुष्य मात्र का क्या जीव मात्र का होता है इसमें भेद इतना ही है कि जहां जितने अधिक समय के लिये स्त्री पुरुष को एक विवाह बंधन में रहकर परस्पर व्यभिचार वर्जित रहना होता है, वह विवाह उतनाही, उत्तम समझा जाता है, और वह श्रेणी उतनीही सभ्य और उत्तम समझी जाती है। जैसा; कीट, पतंग, पशु, पक्षियों में विवाह संबंध बहुत ही अल्प समय के लिये है। जिन जीवों में विवाह संबन्ध जितने अधिक समय के लिये होता है वह उतनेही उत्तम होते हैं पशुओं के

(१) जो लोग गायत्री का अर्थ जानते हैं वे समझ सकेंगे कि गायत्री में केवल बुद्धि की प्रेरणा करने की ही प्रार्थना है और कुछ धर्म भाव नहीं है।

विवाह संबंध की अपेक्षा जिन मनुष्यों में पति और पत्नी के जीवित दशा में ही एक एक से भिन्न होकर दूसरे के साथ विवाह संबंध करसक्ता है उन श्रेणियों को असभ्य कहा जाता है। उनकी अपेक्षा जिनमें विना एक की मृत्यु एक दूसरे के साथ विवाह संबंध नहीं कर सकता (क्यों कि इनका विवाह संबंध जीवन काल व्यापी है) सभ्य कहा जाता है उनसे भी उत्तम श्रेणी वह समझी जायगी; कि जहां पति पत्नी में एक के मृत्यु के अनन्तर भी दूसरा उस विवाह संबंध को भंग न करे अर्थात् दूसरे के साथ विवाह न करे। क्यों कि इनका विवाह संबंध जीवन काल मात्र स्थाई नहीं है किन्तु वह अनन्त काल व्यापी है। यह विवाह आठ प्रकार का है।

(१) ब्राह्म (२) दैव (३) आर्ष (४) प्राजापत्य (५) आसुर (६) गान्धर्व (७) राक्षस (८) पैशाच।

अब इनका थोडा विवरण करते हैं; श्रुत शील सम्पन्न वर को अपने घर बुलाकर वस्त्र अलङ्कारादि से पूजन कर कन्यादान करदेना, 'ब्राह्म' विवाह है।

किसी यज्ञमें कर्मकरनेवाले ऋत्विज को अलङ्कृत कन्यादान कर देना 'दैव' विवाह है।

वरसे एक गौ और बैल लेकर उस को कन्यादान करदेना आर्ष विवाह है। "तुम दोनों जने समान भाव से ग्रहस्थ धर्म आचरण करो" इस वचन से कन्यादान करदेना प्राजापत्य विवाह है।

आज कल द्विजातियों में जो विवाह प्रचलित है वह 'विवाह सङ्कर' है उसमें कुछ लक्षण ब्राह्म विवाह के और कुछ लक्षण प्राजापत्य विवाह के हैं।

कन्या के ज्ञातिकुटुम्बके लोगों को धन देकर, वा

कन्या को धन देकर, जो स्वच्छन्द भाव से विवाह कर लेना है वह आसुर विवाह है।

आज कल भारत वर्ष में ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य आदिकों में आसुर विवाह की भी कमी नहीं है,लडकियों पर रुपया ले लेना आज कल आम रिवाज हो रहा है वड़ी वड़ी सोशियल कान्फ्रेंसें वड़ा आडम्वरकर वडाखर्च कर कर,रिज्यूलेशन पास करती है"कि लडकियोंपर रुपया न लिया जाय"पर हम लडकियों पर रुपये लेनें वालों की वहादुरी की वडाई करते हैं कि इन हजारों आदिमियों के वडी धूमधामसे पास किये रैजोल्यूशन की, वह अकेले घरके कोनेमें वैठकर चुपचाप तरदीद करदेते हैं।

वर और कन्या अपनी इच्छा से जो अन्योन्य संयोग कर लेते हैं वह 'गान्धर्व' विवाह है।

कन्यापक्ष के लोगों को मार काट तोड फोड कर डकराती रोती हुई कन्या को हठात छीनलेजाना 'राक्षस, विवाह है।

सोई हुई वा मतवाली वा वेखवर कन्या को वलात्कार करना सव विवाहों में पापिष्ट पैशाच विवाह है।

हमारी न्याय परायण गवर्नमेन्ट ने अपनी मनुष्य प्रजा को राक्षस और पैशाच भाव से वचाने को इनदोनों विवाहों का इन्डियनपैनेल कोट के अनुसार निषेध कर दिया है अतएव यह दोनों विवाह जुर्म में दाखिल हैं। भारत वर्ष में किसी समय यह दोनों विवाह भी प्रचलित थे; किन्तु अव इन का चिन्ह भी नहीं है। हम गवर्नमेंट से प्रार्थना करते हैं कि जैसा उसने कानून वनाकर वर्दाफरोशी को जुर्म में दाखिल करदिया है एसा ही यदि लडकियों पर रुपये लेने वाले और लडकों पर रुपये लेने वाले निर्दयों को भी कानून की दफा के मुआफिक मुजरिम करार दियाजाय तो

भारत वर्ष में पूर्ण शान्ति होजाय।

विवाह तक के संस्कारों में प्राय: माता पिता का कर्त्तव्य है अत: यहा तक के संस्कार प्रचलित है क्योंकि माता पिता लडकों का संस्कार करना अपना फर्ज समझकर इन संस्कारों को कर देते हैं। इससे आगे के संस्कार अपने आप करने होते है। बस अपने आप कौन झगडे में पडे बालक थे परतन्त्र थे माता पिताने चाहे सिर मुडा दिया चाहे कॉन छिदा दिये चाहे गले में धागा (सूत] गेरदिया, अब हम समझदार है स्वतन्त्र है अपने सुख दु:ख के आप विधाता है अब कौन नित्य'पञ्च यज्ञ, करै कौन'वैतानिक'अग्नि स्थापन करै कौन वैठे ठाले अपने गले झंझट की माला गेरे। इसी शैथिल्य और मनके भाव से विवाह के अनन्तर के संस्कार नष्ट भ्रष्ट होगये है।

हां जहां कहीं धर्मानुष्ठान की पूर्ण परम्परा चली आती है वहां पचीस संस्कार तक होते हैं। और ऐसे संस्कार वाले अपने को 'स्मार्त' नाम से परिचय देते हैं। ये लोग सोलहवे विवाह संस्कार के अनन्तर; आग्रयण अष्टका आश्वयुजी, मार्गशीर्षी, चैत्री, उत्सर्जन, उपाकर्म, और पंच महायज्ञ, तक के नौ संस्कारों की संख्या बढाकर पचीस संस्कार पूरे करते हैं।

नवोत्पन्न व्रीही श्यामाक और यव अन्न को अग्नि होत्र के अनन्तर मन्त्र सहित भक्षण करने का नाम'आग्रयण' है यह'आग्रयण' एकतन्त्र से भी कियाजाता है।

भाद्रपद, मार्गशिर, पौष, माघ, फाल्गुन, इन पांचमहीना ओं की कृष्णपक्ष की अष्टमियों का नाम अष्टका है इनमें जो श्राद्ध वा इष्टी की जाती है उनका नाम 'अष्टका' है।

श्रावणी, आश्वयुजी, मार्गशीर्षी, और चैत्री, पूर्णिमाओं को पौर्णमास इष्टी में कुछ विशेष किया जाता है इसी से इनको

पृथक संस्कार मानागया है।

श्रावण शुक्ल पूर्णमासी आदिक भिन्न भिन्न समयों में चतुर्वेदाध्यायिओं का 'उपाकर्म' होता है इसमें सशिष्य गुरु होम पूर्वक अध्ययन का उपाकर्म करते हैं ॥

उपाकर्म के अनन्तर वेदों का 'उत्सर्जन' किया जाता है इसमें ऋषि तर्पण ही मुख्य अङ्ग है।

भूत यज्ञ [भूतों को बलिदान] मनुष्य यज्ञ अन्नादि दान [अतिथि सेवा] पितृ यज्ञ [नित्य तर्पण नित्य श्राद्ध] देव यज्ञ अग्निहोत्र वा बलि वैश्व देव, ब्रह्म यज्ञ [वेदपाठ] ये पंच महायज्ञ कहलाते हैं।

इस से आगे के संस्कार (वैतानिक) अर्थात् श्रौत अग्नि ही में होते है, विवाह के अनन्तर गार्हपत्य दक्षिण और आहवनीय अग्निओं का, उनके आयतनमें स्थापन करने का नाम 'अग्न्याधान' वा 'अग्न्याधेय' है यह सब वैदिक विधि है।

आज कल बहुत से लोग यह कहा करते हैं कि अब कोई वैदिक कर्मों का जानने वाला ही नहीं है इसी से हम यहाँ इन कर्मों की संक्षेप से 'इति कर्तव्यता' लिखते है। हम को इस लिखने के साथ यह कहना पडता है कि आचार्य्य कुलमें वेदवेदार्थ और वैदिक कर्म के जानने वाले दो चार पुरुष अवश्यहै पर हां। सर्व साधारण में उनके समझने वाले और अनुष्ठान करने वाले बहुत कम है इसी से आचार्य्य गण उनका उपदेश नही करते हैं।

हमारी इच्छा थी कि इस प्रबन्ध में 'अग्निहोत्र' से आरम्भ कर 'अग्निष्टोम' 'वाजपेय' 'अतिरात्र' 'आप्तोर्याम' 'अश्वमेध' आदिक समस्त यज्ञों की विधि भाषा में लिखें और लोगों को दिखलावें कि करनेवाले ही नहीं है, जानने वालों का अभाव नहीं है; परन्तु

हमने यह देखा कि उन वैदिक शब्दोंके अर्थ संस्कृतज्ञ पंडित ही नहीं जानते हैं तबविचारे भाषा पढने वाले क्या समझेंगे! इसीसे इस प्रकरण को विस्तार न कर बहुत ही संक्षेप से लिखा है।

कूष्माण्डहोम, गणहोम, नांदीश्राद्ध, उदकशांति प्रतिसरबंधन, पवन, मंत्राचमन, मंत्रप्रोक्षण, पुण्याहवाचन, मातृकापूजन, आधान संकल्प ऋत्विग्वरण देव यजनयाञ्चा, अग्नेोक्षण, सम्भारसम्भरण, गोपितृयज्ञ, सर्वौषधिहोम ब्रह्मौदनप्राशन, अरणिग्रहण, प्रतपन संम्भार निधान, अग्निमंथन, अग्नित्रयाधान, उत्तर सर्वाग्नि-जप, प्रत्येकोपस्थान; पूर्णाहुति उत्तरकूष्मांण्डहोम, यहांतक का अनुष्ठान 'अग्न्याधान' कहलाता है।

इसआहित अग्निमें जोनित्यदोनो समय होम किया जाता है वह 'अग्निहोत्र' है॥

अमावास्या को अन्वाधान कर शुक्ल प्रतिपदाको जो याग कियाजाता है उसका नाम 'दर्श' है।

पूर्णमासी को अन्वधान कर, कृष्ण प्रतिपदा को याग करते हैं वह 'पूर्णमास' हैं ये दोनो याग 'प्रकृति' नाम से कहे जाते हैं। क्यों कि सब इष्टियो में इन्ही के कर्म कलाप का अतिदेश * किया जाता है।

जहां दर्श और पौर्ण मास को एक संस्कार माना है वहां पार्वण* को और बढाकर चालीस पूरे किये हैं।

---

*एकत्र विहित विधान को अन्यत्र अनुष्ठान करनेका नाम अतिदेश है।

*श्रौत अग्निमें एक पार्वणहोम किया जाता है और अनग्नि ब्राह्मण अमावास्याको पार्वण करते हैं।

आग्रयण संस्कार लौकिक अग्नि में भी करना विधन है, इससे स्मार्तसंस्कारों में वह आगया है श्रौतअग्निवाले आग्रयणको श्रौतअग्नि मे भी करते हैं इसीसे यह संस्कार दोनो मे आया है।

वैश्वदेव, वरुण प्रघास, शाकमेध, सुनाशीरीय, इन च पर्वों मे निर्वाह्य प्रयोग का नाम चातुर्मास्य संस्कार है।

पशुबंध कालमे यूपाहरण कर 'पशु पूर्वेष्टि' यूप संस्कार पशुसंस्कार , पशुसंज्ञपन , पश्वङ्गावदान , वसाहोम हृदयशूलीयगूहन , एकादशप्रैसं , वपामार्जन , पाशुकसमिदाधान, पर्य्यंत का कर्म 'निरूढ पशुबंध' कहा जाता है।

जिस यज्ञ में तीनपशु और सुरा का संधान किया जाता है 'वह सौत्रामणी' नामक संस्कार है।

यहां यह भी जानना आवश्यक है कि वैष्णवजन जैसा पशु के स्थान में पिष्ठ का संस्कार करते हैं एसे ही 'सौत्रामणी' मे सुरा के स्थान पर दुग्ध का संधान करते हैं।

'स्तोम' नाम स्तुति का है जिस याग में अग्नि का स्तोत्र और सोम संस्कार प्रधान है वह 'अग्निष्टोम' है।

अग्निष्टोम में ही 'स्तुत' 'शस्त्र' अधिक होने से अत्यग्निष्टोम होता है।

'उक्थ' और 'षोडशी' दोनो सोम संस्कार के विकृति है।

'वाजपेय' से सब यज्ञों का अधिकार प्राप्त होता है।

षोडशी ग्रहण से 'रात्रि प्रयुक्त साम' जिस अग्निष्टोम में दूसरे दिन आ जाते हैं वह 'अतिरात्र' कहा जाता है

अति रा० का ही भेद आप्तोर्याम है। येही चालीस संस्कार है।

जब वैतानिक [illegible] ही कहीं नही है तब चालीस संस्कार

पूरे करना किस तरह हो सक्ता है। हा ! क्या यह जीव बिना पूरेसंस्कारो के असंस्कृत ही रह जाय, वांछित सिद्धि नहो, मनकी आशा मनहीमें लेजाय ! इसका क्या कोई युक्ति नहीं है ? अवश्य है ! वहहै "दीक्षा" ॥

एक दीक्षा संस्कारही ऐसा है जिसमें अष्टचत्वारिंशत संस्कार पूर्ण होते हैं यदि उपनयनादिक सब संस्कार हुए भी हों और दीक्षा नहो तो सब वृथाही जाते हैं॥

जैसा श्रीहरिभक्तिविलास में विष्णुयामल का वचन है

अदीक्षितस्य वामोरु कृतं सर्वं निरर्थकं
पशुयोनि मवाप्नोति दीक्षाविरहितोनरः

अर्थ — जिसने दीक्षा नहींग्रहणकी है उसके किये हुऐ समस्त कर्म निष्फल हैं, । दीक्षाहीनजन पशुयोनिको प्राप्त होता है ।

मनुष्य किस तरह पशुहोजाताहै यह हमारे 'पुनर्जन्मतत्व' ,पुस्तक में प्रतिपादन कियागया है। इसीसे यहां विस्तार नहीं किया ।

वेद के अंग 'निरुक्त' में अदीक्षित पुरुषको इसी जन्म में पशुसमान होने से पशु कहा है ।

"स्थाणुरयं भार हारः किलाभूदधीत्यवेदं नविजानाति योर्थम् १ अ० खं० ४

अर्थ— जो वेद पढकरभी वेदकाअर्थ नहीं जानता है वह स्थाणु अर्थात् सूखेठूठके समान जड, और पशु के समान बोझ उठाने वाला है ।

भावार्थ इसका यह है जो वेदका अर्थ नहीं जानता हैं वह पशूके समान है, पशुपर मट्टी लाददो तवक्या? और मिसरी लाददो तवक्या? वह दोनोका भारग्रहणकर कष्ट ही पाता

है। जिन्होंनें वेद पढ कर वेद का अर्थ नजाना उन्होंने वेद पढ कर जैसा श्रममात्र किया अलिफलैला हातिमताई पढकर भी वही होता।

वेद पढकर वेदका अर्थ जानने ही से श्रम सफल होता है।

आप लोग भी वेदका अर्थ जानने के लिये अवश्य बडे उत्सुक होंगे। हमयहां वेदके अर्थ को वेद ही से आप को सुनाना चाहते हैं।

ऋग्वेद। मंडल प्रथम। सूक्त १६४। मंत्र ३९। "ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः। यस्तन्नवेद किमृचा करिस्यति यउतद्विदुस्त इमे समासते (१)

अर्थ — परम व्योम अर्थात् सर्व व्यापक और अक्षर अर्थात् कभी जिसका विनाश नहीं होता, एसे परमेश्वर में सबरी ऋचा, अर्थात् वेद के मंत्र और सबरे देवता स्थित है, जो उस परमेश्वर को नहीं जानता है वह ऋचाओं सें अर्थात् वेदके मंत्रों से क्या करैगा ?

जो लोग उस परमेश्वर को जानते हैं वेही उसको प्राप्त होते है। समस्त वेद का अर्थ यही है कि "समस्त वेद मंत्र और उन मंत्रों के प्रतिपाद्य इन्द्र अग्नि आदिक समस्त देवता परमेश्वरही में है वही सबका आधार है"। जो यह नही समझते वे वेद पढ कर क्या करेंगे, उनका समस्त वेद पढना व्यर्थ है। अब विचारिये कि विना वेदकेअर्थ जाने वेद पढाहुआ मनुष्य भी पशु समान है, और वेद का यह अर्थ 'कि ईश्वर ही समस्त मंत्र और देव

---

[१] इसी ऋचाके आधार पर यह 'नारद पंचरात्र' का वचन है विष्णुतत्वं परिज्ञाय एकं चानेक भेदगं दीक्षयेन्मेदिनीं सर्वां किं पुनश्चोपसन्नतान् ॥

ताओं का आधार है' विनाभगवदाराधन के अनुभव में नहीं आसका। क्या हुआ यदि किसी को यह किताबी इल्म होभी परन्तु जबतक इसका आमिल न हो ज्ञानी नही कहा जासकता भगवदाराधन का अधिकार विनादीक्षाके नही होता है इसीसे यहकहा गया है कि विना दीक्षाके मनुष्य पशुसमान है

बहुत से लोगो को यह निश्चय है कि दीक्षा ग्रहण करना व्यर्थ है। 'यज्ञो पवीत' हीप्रधान संस्कार, और गायत्री ही मूल मंत्र है। उपवीतपहर लिया और गायत्री का जप करने लगे बस सिद्ध होगये क्यों कि वेद में यज्ञोपवीत और गायत्रीहीका विधान है दीक्षा का नही।

जिन विचारे मुग्ध जीवों ने कभी वेद की आलोचना नहीं की है वे यदि ऐसा कहें तब तो कुछभी आश्चर्य नहीं है, परन्तु जो लोग अपने को वेदपाठी पण्डित मानते है उन के मुख से यह सुनकर कि "यज्ञोपवीतसे ऊपर कहीं दीक्षाका विधान नहीं है" बडी लज्जाआती है।

हम यहां पर केवल वेद से ही दीक्षा का प्रकरण उद्धृत कर लिखते हैं

यजुर्वेद अ० १९ मंत्र ३०

व्रतेन दीक्षा माप्नोति दीक्षया प्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धा माप्नोति श्रद्धया सत्य माप्यते॥

अर्थ—गुरु सेवा रूप व्रत करके मनुष्य दीक्षा को प्राप्त होता है, और दीक्षा से दक्षिणा की प्राप्ती होती है, दक्षिणा देने से श्रद्धा प्राप्त होती है और श्रद्धा से सत्य प्राप्त होता है॥

ऐतरेय ब्राह्मण अध्याय प्रथम खंड ६

ऋतं वाव दीक्षा, सत्यम दीक्षा,।
तस्माद्दीक्षितेन, सत्य मेव वदि तव्यम॥

अर्थ—दीक्षा ही ऋत है, दीक्षा ही सत्य है इससे दीक्षित पुरुष को सत्य ही बोलना चाहिये।

यह बात भी याद रखनी होगी कि कुछ लोगों ने दीक्षा संस्कार में भी गडवड करदी है कोई रुद्र मंत्र से, कोई शाक्तिमंत्र से और कोई अन्यान्य देवता ओं के मंत्र से लोगोको दीक्षा दियाकरते है। परंतु वह दीक्षानही दीक्षाभास है, क्योंकि दीक्षा के देवता विष्णु ही है विष्णु मंत्र की दीक्षा लेने से ही दीक्षा पूरी होती है।

ऐतरेय ब्राह्मण १ अध्याय प्रथम खंड।

अग्निर्वै देवाना मवमो, विष्णुः परम स्तदंतरेण न्यास्सर्वाः देवताः॥

अर्थ—अग्नि सब देवता ओं मे अवम अर्थात् छोटा है, विष्णु सब देवता ओं में परम, अर्थात् श्रेष्ठ है; इनके बीचमें और सब देवता है।

इसका भावार्थ यह है कि समस्त वेद के कर्मों का आरम्भ अग्निसे होता है, इसी लिये अग्निको सब से अवम कहा है और विष्णु परम अर्थात् सर्वोत्तम है, क्योंकि सर्वेश्वर और सर्व नियन्ता है उनसे परे और कोई देवता नही है; इसी से विष्णु मंत्र ग्रहण 'दीक्षा' संस्कार से ऊपर और कोई संस्कार नही है। और सब देवता इनके बीच मे है अर्थात् अग्नि से सब देवता ओं का पूजन आरम्भ होता है, और विष्णु में जाकर समाप्त हो जाता है, समाप्त यों हो जाता है कि विष्णु के पूजन ही में सब देवता ओं का पूजन हो जाता है विष्णू के पूजन करने वाले को और किसी देवता के पूजन करने का प्रयोजन नही होता है। इसका भी प्रमाण इसी ब्राह्मण के इसी अध्याय में इसी खंड में लिखा है।

विष्णु सर्वा देवताः।

अर्थ—विष्णु ही सर्व देवता है।

इसी ब्राह्मणके इसी अध्याय में पंचम खंड में यह श्रुति मिलती है।

अग्निश्च वै विष्णुश्च देवानां दीक्षा पालौ।
तौ दीक्षाया ईशाते तद्यदाग्ना वैष्णवम् हविर्भवति॥

यौ दीक्षाया ईशाते तौ प्रीतौ दीक्षाम् प्रयच्छंताम्, यौ दीक्षयितारौ तौ दीक्षयेतां।

अर्थ—अग्नि और विष्णु देवता ओंके दीक्षा पालक हैं ये ही दोंनो दीक्षाके ईश है, इसीसे अग्नाविष्णाव हवि होता है। जो दीक्षाके स्वामी है वे ही प्रसन्न हो कर दीक्षा दे जो दीक्षा देने वाले हैं वे ही दीक्षा दें।

इन वेद की श्रुतियों से यह सिद्ध है कि अग्नि और विष्णु ही दीक्षा के स्वामी है, इसी से अग्नि से दीक्षा का आरम्भ होता है अर्थात् होम किया जाता है और विष्णु में दीक्षा की समाप्ती होती है, अर्थात् विष्णु मंत्र ग्रहण कर दीक्षा पूर्ण हो जाती है। अब विचारना चाहिये कि वेद शास्त्रके विधान में तो विष्णु ही को दीक्षा का स्वामी लिखा है और वैष्णवी दीक्षा ही दीक्षा है पर मन मानी घर जानी में चाहै देवी जी कोले आइये, चाहै महा देवजी को, चाहै भैरव जीको चाहै भवानी जी को।

इसी कारण से दीक्षित पुरुषको 'वैष्णव' कहते हैं क्योंकि वह दीक्षा लेने के अनन्तर सर्व देव मय विष्णु को ही अपना प्रभु मानता है और पूजन करता है।

ऐतरेय ब्राह्मण के ३ अध्या० ४ खंडमें यह श्रुति है

वैष्णवो भवति विष्णुर्वैयज्ञ स्वयमेवैनं
तद्देवतया स्वेन छंदसा समर्द्धयति

अर्थ—विष्णुदीक्षा ग्रहण करने से ही यह पुरुष वैष्णव होता है यज्ञनाम विष्णुही का है विष्णु देवता अपने आप अपनी स्वतंत्रता से इस पुरुष को (जिसने दीक्षाली है और जो वैष्णव है) वर्द्धन करते हैं।

इसी वैदिक प्रकरण का स्वरस लेकर श्रीहरिभक्ति विलास के द्वितीय विलासमें यह विष्णुयामलकावचन उद्धृत किया है ।

अतो गुरुं प्रण म्यैवं सर्वं स्वं विनिवेद्यच ।
गृग्रहीया द्वैष्णवं मंत्रं दीक्षा पूर्वं विधानतः ॥

अर्थ—इसी से गुरुदेव को प्रणाम कर, अपना सर्वस्व गुरु चरणार विंद में समर्पण कर, दीक्षापूर्वक वैष्णवमंत्र ग्रहण करै ।

दीक्षा शब्द की निरुक्ति भी यहीं की है ।
दिव्यं ज्ञानं यतोदद्यात् कुर्यात् पापस्य संक्षयं ॥
तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता देशिकैस्तत्वकोविदैः ।

अर्थ—जिस से दिव्यज्ञान देती है, और पापका नाश करती है अतः तत्वज्ञ देशिक, उसको दीक्षा कहते हैं।

विष्णु मंत्र ग्रहण करने से जिनकी वैष्णव संज्ञा हो जाती है उनमें जातिभेद मानना वा, जातिबुद्धिकरना, शास्त्रों मेंनिषिद्ध है; क्योंकि वे सब ब्राह्मण वा द्विज ही होजाते हैं । जैसातत्व सागर का वचन है ।

यथा कांचनतां याति कांस्यं रस विधानतः ।
तथादीक्षा विधानेन द्विजत्वं जायते नृणां ॥

अर्थ—जैसे रसायन क्रिया से कांसा, सोना होजाता है वैसेही दीक्षा के प्रभाव से मनुष्य को द्विजत्व प्राप्त होता है।

वैष्णवों का यह व्यवहार देख कर वहुत से कर्म जड़

ब्राह्मणाभिमानी स्मार्तजन, इनकी निंदा करते है, इनका ठट्ठा उड़ाते है, इनको भ्रष्ट बतलाते हैं कहते हैं; 'वैष्णव वर्णाश्रम को नहीं मानते हैं'। परन्तु वह नहीं जानते हैं कि वर्णाश्रम का मूल वेद है वैष्णव जन वेद के अनुसार वर्णाश्रम मानते है; वेद विरुद्ध कपोल कल्पित नहीं मानते। वेद मे दीक्षित को ब्राह्मण ही कहा है चाहे वह कोई वर्ण क्यो न हो।

शतपथ ब्राह्मण १३ प्रपा० । अ० ४ । १ । ३

तद्वै वसन्त एवाऽभ्यार भेत, वसन्तो वै ब्राह्मणस्यर्तु,
यउवैकश्च यजते ब्राह्मणीभूयैव यजते ॥

अर्थ—वसन्त में ही आरम्भ करना चाहिये। वसन्त ही ब्राह्मण का ऋतु है। जो कोई यजन करता है वह ब्राह्मण होकर ही यजन करता है।

ऐतरेय ब्राह्मण के ३४ अध्याय ७ खंड मे
और भी स्पष्ट लिखाहै।

यथै. तद्ब्राह्मणस्य दीक्षितस्य ब्राह्मणो दीक्षिष्टेति
दीक्षा मावेदयन्त्येव मे वैतत्क्ष त्रियस्य ॥

जैसा ब्राह्मण के दीक्षा समय आवेदन (मुनादी) करते हैं 'कि' अमुक ब्राह्मण ने दीक्षा ली' ऐसा ही क्षत्रिय को भी। अर्थात् क्षत्रिय को भी ब्राह्मण कहकर आवेदन करते है।

इसी श्रुति के भाष्य में आपस्तंब सूत्र का प्रमाण दिया है।

"ब्राह्मणो वा एष जायते यो दीक्षते, तस्माद्राजन्य वैश्यौ अपि ब्राह्मण इत्येवा वेदयति।"

अर्थ—जो दीक्षा ग्रहण करता है वह ब्राह्मण हो जाता है। इसी से क्षत्रिय वैश्यों को भी दीक्षा लेने पर ब्राह्मण कहकर आवेदन (मुनादी) करता है।

इन्ही वैदिक वचनों के आधार पर पुराणों के ऐसे वचन संगत होते हैं जैसा पाद्म में भगवद्ब्रह्म संवाद मे लिखाहै।

नशूद्रा भगवद्भक्तास्तेतु भागवता स्मृताः।
सर्व वर्णेषुते शूद्राये न भक्ता जनार्दने॥

अर्थ—भगवद्भक्त शूद्र नहीं है, वे तो भागवत है। भगवान के निज जन है जो भगवान् में भक्ति नहीं रखते हैं वे किसी वर्ण में क्यों नहो वे ही शूद्र हैं।

श्वपाक मिवनेक्षेत लोके विप्र मवैष्णवं
वैष्णवो वर्ण वाह्योपि पुनाति भुवनत्रयं

अर्थ—लोक में अवैष्णव विप्रसे श्वपच के समान बचता रहै वैष्णवजन वर्ण वाह्यभी भुवन त्रय को पवित्र करता है।

इस सिद्धान्त को सुनकर 'चौंकना' न चाहिये ग्रन्थकार को गाली देने को तयार मत' होजाना, थोरा विचार करलेना कि लोक में हम हजारों आदिमियों से नित्य 'जातिबुद्धि' छोडकर व्यवहार करते हैं कि नहीं।

देखो फर्ज करो, तहसीलदार साहव,डिपटीसाहव, इंसपेक्टर साहव,कोतवाल साहव, ये ब्राह्मण हों,तवभी तहसीलदार साहव, डिपटी साहव,इंसपेक्टर साहव, और कुतवाल साहव है;कायस्थहों तवभी, यवन हों तव भी, और वढई धुना हों तव भी,वहीहैं क्योंकि हम जो उनकी प्रतिष्ठा और मान करते है, वह उनके पद का है। विचार करो; तुम वडे ब्राह्मण वेद पाठी और कुलीन हो, और कही तहसीलदार साहव तेलीहैं,तो क्या तुम दरख्वास्त देते समय अपने को फिदवी न लिखोगे ? नहीं अवश्य लिखना होगा क्यों कि वह भाव हमारा गवर्नमेंटमें हैं। गवर्नमेंट की सर्विस में स्थिति रहने से है। हम अपने को उनका'फिदवी' लिखते हैं,उनका यथोचित अदव करतेहैं। ऐसा ही विष्णुभक्ति के कारण से हम वैष्णव को उत्तम

समझते हैं; उनकी जाति बुद्धि छोड़कर उनका सन्मान करते हैं वह सन्मान परंपरा सम्बन्ध से जगदीश्वर विष्णु का ही है जो वैष्णव का कियाजाता है । इस उदार भाव ही से यह प्रमाण होता है कि वैष्णव धर्म जगत् के समस्त धर्मों का शीर्षस्थ है । जैसा विष्णु परतत्व, समान भाव से ब्राह्मण शूद्र चांडाल अन्त्य जादिकों में व्याप्त हैं किसी की जाति बुद्धि कर, घृणा वा प्रीति नहीं करते है; वैष्णव धर्म भी ऐसाही समान भाव से सब को शरण देता है, इसी से इस का नामान्तर 'सार्व भौम' धर्म है और इस की व्यवहार नीति है 'विश्व जननि बंधु भाव'

धर्म विरोधी लोगोंने एक यह भी अपसिद्धान्त प्रचार कर-रखा है 'कि स्त्रियों को दीक्षा ग्रहण न करना चाहिये' कहीं कहीं यह कुसंस्कार है 'कि सधवा स्त्रियों को दीक्षा न लेनी चाहिये' इन सब अप सिद्धान्तों का मूल एक यही टूटा फूटा वचन है .

गुरु रग्नि र्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः
पति रेव गुरु स्त्रीणां सवर्त्रा भ्यागतो गुरुः

अर्थ—द्विजातिओं का अग्नि गुरू है, वर्णों का ब्राह्मण गुरु है, स्त्री ओं का पति ही गुरू है, सर्वत्र अभ्यागत गुरु है। इस में सिद्धा-न्त यह किया जाता है कि जब स्त्री यों का पति ही गुरु है, तब उनको और गुरु करने की क्या आवश्यकता है॥

हम प्रथम तो यह दिखावें गे कि स्त्रियों की दीक्षा का वर्णन कहाँ है। रामायण आदि काण्ड ८ सर्ग २४ श्लोक।

उवाच दीक्षां विशत यक्ष्येह सुत कारणात्

अर्थ—दशरथ राजा ने रानियों से "कहा तुम सब दीक्षा ग्रहण करो मैं पुत्र के अर्थ भगवान् का यजन करूंगा।" ।

संस्कार रत्न माला में मंत्रोपदेश प्रकरण में यों लिखा है ॥

स्त्रीणामप्यधि कारोऽस्ति विष्णो राराधना दिषु पति प्रिय रता नांच श्रुति रेषा सनातनी ॥

अर्थ—पति प्रिय रता, पतिव्रता स्त्रियों को विष्णु के आराधना दिकमें भी अधिकार है यह सनातन "श्रुति" है ॥

मृगी दृशां विशेषण मंत्रा एतेसुसिद्धिदाः ॥

अर्थ—ये मंत्र विशेषतः मृगनयनीओं को सुसिद्धि देने वाले है

यह तो स्त्रियों के दीक्षामंत्र ग्रहण का अधिकार शास्त्र के बचनों से संक्षेप से दिखाया गया अब उस वचन की आलोचना करते हैं ॥

'पतिरेव गुरु स्त्रीणां' इससे यदि स्त्रियों को गुरुमुख नहोंना सिद्ध होता है, तो आप ब्राह्मण भी किसी से गायत्री लेकर किसी के चेले न वने क्योंकि इसी श्लोक के प्रथम चरण में लिखा है 'गुरुरग्नि र्द्विजातीनां' तव अग्नि के रहते फिर आपको दूसरे गुरु की क्या आवश्यकता है। और अंत मे लिखा है 'सर्वत्रा भ्यागतो गुरुः' तव अभ्यागत को छोड कर अग्नि वा ब्राह्मण को भी गुरु न करना चाहिये। पंडितं मन्यजी! यह गुरु शब्द 'गौरव' होने से है। जिसका गौरव किया जाता है वह भी गुरु होता है जैसा कूर्म पुराण का वचन श्रीहरि भक्ति विलास में है।

यो भावयति या सूते येन विद्योपदिश्यते
ज्येष्ठोभ्राता च भर्ता च पञ्चैते गुरवः स्मृताः

अर्थ—जो पालन करता है पिता. जो जनमाती है माता, जो विद्या पढाता है, वह अध्यापक, वडा भाई और भर्ता, अर्थात् पति ये पांच गुरु हैं। इनका गौरव करना सन्मान् आज्ञा पालन करना चाहिये।

और जो दीक्षा देता है उसको गौरव मात्र से गुरु नहीं कहते

है यह तत्वोपदेश करने के कारण गुरु कहा जाताहै

गृणाति तत्व मिति गुरुः

घोरा और ठहरौ पति पत्नी में गुरु शिष्य भाव ! क्या घोर पाषण्ड है। कहां धर्म मय पार मार्थिक सम्बन्ध, और कहां काम मय पति पत्नि सम्बन्ध। हा ! भ्रान्त पंडित जगत् में एसा मत प्रचार करते हैं वे अपनी पत्नियों को गुरुओं के समान धर्म की पुत्री भाव से देखते हैंगे, और पत्निये भी उनको गुरु के समान धर्म के पिता मानती होंगी। हन्त ! वे पंडित, पवित्र गुरु शिष्य सम्बन्ध को पति पत्नी में लाकर स्त्री पुरुषों को ही निरयागमी नहीं करते हैं परन्तु विशुद्ध धर्म भाव को भी काम की दुर्वार वासना से कलुषित करते हैं।

कभी यह भी तो विचारिये कि गुरु के आसन पर पांम धरना शैय्या पर पाम धरना, शिष्यों को सर्वथा निषेध है। जो लोग पतिही में पत्नी को गुरु भाव करने का उपदेश करते हैं वे स्त्रियों को एसे अपराधों से वचने के लिये क्या उपाय विचारते हैं, वे एसे अपराधों से स्त्रियों को नरक में भेजते हैं। और जो पत्नी इन अपराधों से वचे तो काहेको किसी का वंशचले और संतति हो।

वहुतसे लोग यहशंका करतेहैं कि यदि दीक्षा वैदिक संस्कार है तो विना उपनयन के दीक्षा कैसे होसक्ती है!

इस का उत्तर यह है कि प्रथम तो दीक्षा के समय जब अड-तालीस संस्कार किये जातेहैं उनमें 'उपनयन' भी होहीजाताहै ॥

दूसरा यह कि उपनयन की कोई निष्ठा नहीं हैं उपनयन संस्कार अनिश्चित है। एकवेर होकर भी व्यर्थ होजाता है शा ट्यायन ब्राह्मण में लिखा है 'नान्यत्र संस्कृतो भृग्वंगिरोऽधीयत' (अन्यत्र अन्य वेदार्थ भृग्वंगिरो ऽयं वेदं) उपनीत स्यापि अथर्व वेदाध्ययनार्थं पुन रुपनयनं श्रूयते ॥

अर्थ—ऋगवेद आदि के पढाने को जिसका उपनयन (यज्ञोपवीत) हुआ है अथर्व वेद न पढे, अथर्व वेद पढाने को उसका पुनः उपनयन संस्कार होना चाहिये।

जब उपनीतका भी पुनरूप नयन कियाजाता है तब उपनयन संस्कार की क्या निष्ठा है।

और एक मजाक की बात यह है कि स्त्रियो का भी उपनयन लिखा है।

द्विविधा स्त्रियो ब्रह्म वांदिन्यः सद्योवध्वश्च।
तत्र ब्रह्म वादिनी ना मुप नयनं अग्नी धनं ॥
वेदा ध्ययनं स्वगृहे भैक्ष चर्या चेति ।
सद्यो वधूना मुपनयनं कृत्वा विवाह ॥

अर्थ—दो प्रकार की स्त्रिये हैं ब्रह्मवादिनी और सद्योवधू इनमे ब्रह्मवादिनीओ का उपनयन अग्नि धन, और वेदा ध्ययन एवं अपने घरही मे भिक्षा कर ब्रह्मचर्य आश्रम है, और सद्यो वधूओं का उपनयन कर विवाह कर दियाजाता है।

गोभिल सूत्रमे भी लिखा है।

प्रावृतां यज्ञोपवीतनी मभ्युदानयञ्जपेत् ॥

प्रावृता यज्ञोपवीतिनी को लाकर जपे।

२ प्रा० १ खंड

उपनयन का यह हाल है किदो वेर हो, तीन वेर हो, स्त्रियो का हो तब उसकी निष्ठा क्या है।

और अनुपनीत को भी शिक्षादी जाती है जैसा शात्या यन से याज्ञ वल्क्यने कहा है।

अनुपेतायैव तपतत् ब्रवाणि।

शतपथ ब्राह्म० का० ११ प्र० २ – ८

अर्थ— मै विनाही- उपनयन के यह तत्व तुम को बतातांहू

सुतरां उपनयन के बिनाभी तत्वोपदेश रूप दीक्षा हो सकी है अतएव करुणामय आचार्यगण अनुप नीतों को भी दीक्षा दिया करते हैं ।

अनेक लोग कहते हैं, दीक्षा क्या है एक तमासा है अग्नि स्थापन कर, होम करते हैं, घट स्थापनकर, उसके जलसे कुशाओं के गुच्छा से छीटादेते हैं, कंठी बांध देतेहैं, तिलक लगादेतेहैं, कपडे से शिष्य का शिर ढक देतेहैं आप भी उस कपडे से अपना शिर ढककर, कान में 'मंत्र' देते हैं

जो लोग एसा आक्षेप करते हैं वे वेद के क्रिया कलापको नहीं जानते हैं। इनसब क्रियाओं का भाव वेद में योंलिखा है।

ऐतरेय ब्राह्मण १ अध्याय ३ खंड।

पुनर्वा एत मृत्विजो गर्भं कुर्वन्ति यंदीक्षयन्ति।

अद्भि रभिषिचन्ति । रेतोवा आपः सरेतस मेवैनं कृत्वादीक्षयंति, एकविंशत्यादर्भ पिंजुलैः पावयन्ति । शुद्धमे वैनं तपूतंदीक्ष यान्ति ।

वाससा प्रोर्णुवंति उल्वं वा एत दीक्षितस्य ।

यद्वासः उल्वं नैवैनं तत्प्रोर्णुवन्ति ॥

अर्थ —ऋत्विज जिसको दीक्षित करते है फिर गर्भ करते हैं अर्थात उसका पुनर्जन्म होता है।

जलसे अभिषेक करते हैं। जलरेतो रूप है। उसको सवीर्य कर ही दीक्षित करते है।

इकीस दर्भों की गुच्छी से पवित्र करते है। शुद्ध और पवित्र करही दीक्षत करते है ।

वस्त्र से ढकते है। यह वस्त्र दीक्षित का (उल्व) अर्थात् जरायु (जिसमे गर्भ में बालक रहता) है, पुनर्जन्म दीक्षा में वस्त्र रूप उल्व से ही इसको आच्छादन करते है।

दीक्षा के समस्त क्रिया कलाप का वेद में वडे उत्तम प्रकार से निर्णय है। जो संक्षेप से ऊपर समझाया गया है अनेक लोग कहते हैं 'अजी ! कंठी में क्या रखा है यह तो काठकी होती है। ठीक है आप कभी यह भी विचारते है रखा क्या होता ? कहिये 'जनेऊ' में क्या रखा है वह भीतौ सूतका है मालाकाठ की है काठ क्या है वृक्षका एक अंग है। विचारना चाहिये रुइ क्या है यह भी वृक्षमें उत्पन्न होती है। माला खराद पर उतारी जाती है यह चर्खे पर काता जाता है। बुद्धि से विचारिये इसमें क्या भेद है।,

जैसा 'उपनयन' संस्कार का चिन्ह यज्ञोपवीत है एसा ही दीक्षा' संस्कार का चिन्ह माला तिलक है। नजाने भ्रान्त जीव तुलसी के वृक्षसे क्यों नाराज है, और वन विनोले से क्यों खुश जो इसे आठ पहर कंधे पर रखते और इसे औरों के गले में रखकर भी हंसते है

यह भी तर्क किया जाता है "क्या माला तिलक न हो तौ भव नहीं हो सकता है ! क्या माला तिलक ने भगवान को और क्ति को मोल ले लिया है ?

इसका उत्तर यही है क्या जनेऊ ने द्विजत्व को ठेके लिया है या विना जनेऊ कोइ द्विज नही हो सकता है ! कोई वेद नहीं ह सका है।

भाई ! जैसा उपवीत द्विजत्व का द्योतकहै माला तिलक वैष्ण वं का द्योतक है। जैसा उपवीत विना यज्ञ श्राद्धादिका अधि र नही होता है, एसाही मालातिलक विना भजन ध्यान उपास का अधिकार नहीं है। इसी से दीक्षा संस्कार मे मालातिलक रण कराया जाता है। और दीक्षित पुरुष उनको जनेऊ के मान नित्य धारण करते हैं। अब मंत्रोपदेश का विषय रहा सो

उसमे यहां इतना ही कहते हैं कि वहपरम गोप्य विषय है उसी का नाम 'पराविद्या' है जैसामण्डक उपनिषद् मे लिखा है।

तस्मै सहोवाच, द्वे विद्ये वेदितव्य इति ह्म्म ।
यद्ब्रह्म विदो वदन्ति पराचैवा पराच ॥ ४ ॥
तत्राऽपरा ऋगवेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः ।
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिष
मिति; अथापरा यया तदक्षर मधि गम्यते ॥ ५ ॥

सारार्थ – दो विद्या जानने योग्य है एक (परा) विद्या और एक (अपरा) विद्या - अपरा विद्यामें ऋगवेद यजुर्वेद सामवेद अथर्व वेद। शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छंद ज्योतिष सब हैं (परा) विद्या वह है जिससे ईश्वर की प्राप्ति होती है।

वह ईश्वर प्राप्ति का कारण परा विद्या रूप 'दशार्ण विद्या' 'अष्टा दशार्ण विद्या' हैं वह तो दीक्षा पूर्वक श्रीगुरू चरण का आश्रय लेकर ही सीखनी उचित है इसी से उस 'वेद शिरो' रूप विद्या का यहां कुछ उल्लेख नहीं है।

गर्भा धान से आरम्भ कर अस्पृहा पर्यन्त अडतालीस संस्कार दीक्षा में होते है। जो यथा विधि सांप्रदायिक आचार्यों से दीक्षा ग्रहण करते हैं उनके अडतालीसों ही संस्कार हो जाते है।

यज्ञोपवीत संस्कार भी इन अडतालीसो संस्करो के अन्तर्गत है दीक्षा ग्रहण करने के समय वह भी हो जाता है इसी से दीक्षा ग्रहण करने वालों को यज्ञोपवीत की कुछ विशेष अपेक्षा नहीं रहती है जिन लोगों को दिखावा ही अधिक प्रिय है धर्मके बहिरंग अनुष्ठान ही में विशेष रुचि होती है उनको श्रीगुरुदेव दीक्षा के समय माला तिलक आदि वैष्णव चिन्होंके साथ यज्ञोपवीत भी देदिया करते हैं ।

यज्ञोपवीत के अनन्तर गायत्री उपदेश के पश्चात् वेद पढने का अधिकार होता है, उपनयन और गायत्री वेदके पाठका द्वार है, जब वेद पढकर पदार्थ जान कर उस अर्थका साक्षात् अनुष्ठान करना होता है तब दीक्षा ग्रहण होता है सुतरां उपनयन गायत्री दाखला है और 'दीक्षा ग्रहण सार्टीफिकट है। बस इसी से इन दोनो का तार तम्य भी जाना जासकता है।

इस 'अष्ट चत्वारिंशत्संस्कार मयी' दीक्षाको तान्त्रिक दीक्षा भी कहते हैं। बहुत से अल्पज्ञ जन तांत्रिक दीक्षाका यह अर्थ समझ लेते हैं कि यह वैदिक दीक्षा नही हैं तांत्रिक दीक्षा हैं वैष्णव धर्म तांत्रिक धर्म है; कोई वेद से भिन्न पुस्तक ऐसा समझ लेनेका यह कारण हैं कि वे वेद का विषय पूरी तरह नहीं देखते हैं। वेद मे क्रिया कलापके अनुष्ठान के एक प्रकार को तंत्र कहते हैं।

कात्यायन श्रौत सूत्र १ अध्याय ७ कंडिका १ सूत्र।
कर्मणां युग पद्भाव स्तंत्रम्।

अर्थ—अनेक कर्मोका एक कालमे अनुष्ठान करनेका नाम 'तंत्र, है गर्भाधान से लेकर अस्पृहा पर्य्यन्त के समस्त संस्कारों का एक साथ अनुष्ठान होने के कारण इस दीक्षा को 'तांत्रिक दीक्षा कहते है; और देवतोद्देशसे द्रव्य त्यागात्मक यज्ञ को सर्व देव मय विष्णु भगवान् के आराधन मे एक साथ अनुष्ठान करने से उस यज्ञ को तांत्रिक पूजन विधि कहते है; इन समस्त वैदिक सिद्धान्तो को न देखकर जो वैदिकम्मन्य जन, सर्वधर्मसमुदायरूप वैष्णव धर्मकी, और सर्व संस्कार मय दीक्षा संस्कार की वृथा निन्दा किया करते हैं हम उनके विषय मे कुछ नहीं कहा चाहते हैं केवल यही कहते है "कि प्रभु उनकी बुद्धि शुद्ध करे॥ ॥ इति ॥

श्रीमद्भागवतमहापुराणम् ।

रत्न के समान दुर्लभ और मूल्यवान् नौ टीका सहित उपरि लिखित पुराण हम लोग खण्ड खण्ड क्रम से प्रकाश करते हैं नौ टीका भिन्नदेशस्थ भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के आचार्यगण ने भिन्न भिन्न समय में लिखी हैं इन का सङ्ग्रह करना कितना कठिन है इस में कितना श्रम हुआ है कितना समय लगा है कितना अर्थव्यय हुआ है यह तो बुद्धिमान जन सहज ही में जान सक्ते हैं। परन्तु हमारा उद्देश व्यापार करना नहीं है विज्ञापन की चमक दमक नहीं दिखाना है सहज भाषा में सरल भाव लिखा है। देखिये कैसी कैसी दुर्लभ टीकायें हैं.

(१) श्रीधरस्वामी की भावार्थदीपिका (२) दीपिका दीपन, यह श्रीधर स्वामी की टीका की टीका है (३) वीरराघवी, श्रीरामानुजसम्प्रदाय की टीका है (४) विजयध्वजी, श्रीमाध्वसम्प्रदाय की टीका है (५) गौडेश्वराचार्य श्रीजीवगोस्वामी का क्रमसन्दर्भ है (६) श्रीवल्लभाचार्य जी की सुबोधिनी (७) श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती जी की सारार्थ दर्शिनी टीका है (८) श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय का श्रीशुकदेवाचार्य का सिद्धान्तप्रदीप है।

इन संस्कृत की आठ टीकाओं से अतिरिक्त हिन्दी भाषा का ललित अनुवाद है। इन नौ रत्नों से जडे सर्व पुराण मुकट श्रीमद्भागवत को कौन आदर न करेगा. तिसपर परम सुलभ मूल्य॥

१ राजा महाराजा धनिक जमींदारों से ... ... १००) रु०

२ ब्राह्मण पण्डित साधारण से ५०) रु० डाक-महसूल अलग।

जगन्नाथवल्लभनाटक ।

परमप्रतापशाली उत्कलाधीश गजपतिप्रताप रुद्र राजा के अमात्य, परम रसिक भक्त रामानन्दराय कवि का निर्मित पूर्वानुराग से मिलन पर्यन्त श्रीराधाकृष्ण की मधुर रस लीला वर्णनमय काव्य है। संस्कृत मूल ग्रन्थ का परम सरल हिन्दी भाषानुवाद सहित छापागया हैं॥

मूल्य सर्व सुलभता के अर्थ ।||) मात्र ।

परपक्षगिरिवज्रः ।

यह सर्व विद्वानों को विदित है कि निगम कल्प तरु का रसमय फल वेदान्त शास्त्र के स्वस्वसिद्धान्तो के अनुकूल अनेको ग्रन्थ छपचुके हैं परन्तु ऐसा कोई ग्रन्थ आज तक नहीं छपा कि जिसके अवलोकन से सम्पूर्ण सिद्धान्तों के वेदान्त का ज्ञान होवे इस ग्रन्थ में यह अद्भुत चमत्कार है कि इस ग्रन्थ के अवलोकन से सर्व शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान होकर सत्यासत्य का विचार होता है, और आत्माराम का आनन्द समुद्र उमडकर ब्रह्मरस का आस्वादन करने लगता हैं, और दूसरे ग्रन्थ के अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं रहती है, हरएक विद्वद्वर इस ग्रन्थ के अवलोकन से पूर्ण लाभ उठा सक्ते हैं, विद्वानो को यह ग्रन्थ पास राखने योग्य है इस ग्रन्थ के पास राखने से आप लोगों को विद्वन्मण्डली में किसी तरह से संकुचित न होना पडेंगा । यह ग्रन्थ इतना बडा होते भी सर्व साधारण के सुभीता के लिये अग्रिम मूल्य राजा महाराजा धनिक जमीदारों से ८) रु०

ब्राह्मण पण्डित साधारणेभ्यो ५) रु०

श्रीगोपालचम्पूः

श्रीजीव गोस्वामि विरचित यह ग्रन्थ २१६५ पृष्ठका है इस मे सत्तर ७० पूरण प्रकरण है यह ग्रन्थ भागवत की कथा करने सुनने वालोंका बडा उपयोगी है इस मे दशमस्कंकी कथाके अपूर्व अनेक मनोहर चरित्र हैं इसके पूर्वचम्पू उत्तर चम्पू भाग हैं पूर्वार्धं मे गोलोकादि व्रज की सब लीलोका वर्णन है उत्तरार्धमें मथुराद्वारिकादि विविध लीला हैं कहांतक कौन लिखे मंगाकर ही क्यों न देखलीजिये कस्तूरीका सुगन्ध क्या छिपसक्ता है इतना होने पर भी मूल्य केवल १०) मात्र है

श्रीकृष्णभावनामृत ।

यह ग्रंथ श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीजीका रचित काव्य रूप है इस मे वीस २० सर्ग हैं तिनमे श्रीकृष्ण भगवान्की अष्टकाल सेवा का निरूपण है । प्रातःकालसे उत्थान स्नान वस्त्र भूषणादि भोजन पुष्पक्रीडा कंजलीला वनभ्रमण ऋतुवर्णनपाशाखेलना श्रीराधिकाजीका वियोग फिर मिलना इत्यादि सर्वागणोंके सायलीला का वर्णन है मूल्य २) रु० ॥

पता — श्रीतिलकस्वरूप ब्रह्मचारी श्रीदेवकी नन्दन प्रेस ।

सन्दर्भ सदन में नीचे लिखी पुस्तकै प्राचारार्थ प्रस्तुत हैं ।

(१) उपासनातत्त्व—सारसुधानिधि प्रभृति प्राचीन पत्रों में प्रशंसित, उपासना विषयक प्राचीन पुस्तक । वेदमन्त्रों से ईश्वर और उपासना का सिद्धान्त । मूल्य ≡)

(२) प्रतिमातत्त्व—चारों वेदों के मन्त्रों से प्रतिमा पूजन का निरूपण और अकाट्य युक्ति । मूल्य ।)

(३) आर्यसमाजीय रहस्य—आर्यसमाज का निगूढ़ रहस्य

लीलास्थल परिक्रमा माहात्म्य । विनामूल्य ।

(५) श्रीराधारमण प्राकट्य—सचित्र ऐतिहासिक कथा । मूल्य कुछ नहीं ।

श्रीवैष्णवधर्म, स्मार्तधर्म. दीक्षातत्त्व, दर्शनतत्त्व, पुनर्जन्म-तत्त्व, वेदान्ततत्त्व, आदिक सन्दर्भ अति शीघ्र प्रकाशित होंगे ।

राधाकृष्ण गोस्वामी ।

सन्दर्भ सदन,—वृन्दावन, (जि० मथुरा ।)

श्रीश्री गुरुतत्व

इस पुस्तक को हिन्दूधर्मका सार कहना चाहिये । क्योंकि गुरु ही हिन्दूधर्म का मूलहै । इसमें गुरुके समस्त लक्षण, शिष्यों के लक्षण, अयोग्य गुरु, और त्याज्य शिष्यों के लक्षण, वर्णित है । गुरुसेवा विधि और सब ज्ञातव्य विषय संग्रहीत है । मूल संस्कतश्लोकोंकी भाषा व्याख्या भी है तिसपर मूल्य-) मात्र

सुवर्णघटित मकरध्वज ।

आयुर्वेद में यह सर्वोत्तम भेषज है । अपनी दृष्टि के आगे प्रवीण वैद्य से बनवाया है । कलकत्ता आदि स्थानों में इसका ८०) रु० तोलेतक मूल्य ले लेते हैं । यहां सर्वसाधारणकी सुविधा के लिये ३२) रुपैया तोले कर दिया है ।

शुद्ध सुवर्ण भस्म ।

मूल्य ४८) रु० तोले ।

सोमाञ्जन !!!

इस के सार्टीफिकट आप को नहीं दिखाये जायगे । क्योंकि आप स्वयं इसका सार्टीफिकट देंगे । पहले एक सलाई अञ्जन एक नेत्र में डाल लीजिये, कुछ सेकैंड ठहरकर देखेंगे नेत्र शीतल हो गया, तब दूसरा नेत्र बन्दकर इस से कुछ चीज देखिये फिर उस से देखिये जिस में अञ्जन नहीं डाला है । आप देखेंगे जिस नेत्र में अञ्जन डाला है, उस से कितना साफ और उज्वल दीखता है । जब यह भेद आप जानलें दूसरे नेत्र में अञ्जन डाल लें । महीना पंद्रह दिन यह अञ्जन लगाने से चशमें की जरूरत नहीं रहती है ।

मूल्य १ शीशी ।) आना ।

ये ऊपर लिखित समस्त औषधियें भी सन्दर्भसदन से इस लिये प्रचार की जाती हैं कि जिससे यथार्थ औषधि सर्वसाधारण को थोड़े दाम में मिलें ।

राधाकृष्ण गोस्वामी

सन्दर्भसदन—वृन्दावन (जि० मथुरा ।)